ପରମହଂସୋପନିଷଦ୍

==============

ଛନ୍ଦ

  ପଦ 1-6 ମନ୍ଦାକ୍ରାନ୍ତା

  ପଦ 7-11 ପଥ୍ୟାବକ୍ତ୍ର ଅନୁଷ୍ଟୁପ୍

  ପଦ 12 କରଞ୍ଚି

ଅନୁବାଦ: ଲଲାଟେନ୍ଦୁ କବି

==============

ମୁକ୍ତ୍ୟୁଦ୍ଦେଶେ ମୁନି ପରମହଂସଙ୍କ ପନ୍ଥା କି ଥାଏ
ଧର୍ମଜ୍ଞାନେ କି ଭଳି ରହି ସେ କେଉଁ କୃତ୍ୟେ ପ୍ରବୃତ୍ତ ।
ଏମନ୍ତପ୍ରଶ୍ନ କରି ବସିଲେ ନାରଦ ଜ୍ଞାନନିଷ୍ଠ
ଧୀରେ ବ୍ରହ୍ମା ସଦୟ ବଚନେ ଭାଷିଲେ ଏହି ଭାଷା ॥1॥

ସେ ସନ୍ୟାସୀ ବହୁ ଅଶିଥିଳ ସ୍ୱପ୍ରତିଷ୍ଠ ସ୍ୱମାର୍ଗେ
ନାନା କ୍ଲେଶଗ୍ରସିତ ପଥ ସେ ସ୍ୱଳ୍ପ ସେ ମାର୍ଗଗାମୀ ।
ସେ ମାର୍ଗେ ଯେ ଚଳୁଛି ଭୁବନେ ବ୍ରହ୍ମରେ ସେ ନିବାସୀ
ସଂସାରେ ଦୁର୍ଲଭ ସୁପୁରୁଷ ପ୍ରାଜ୍ଞ ସେ ବେଦବେତ୍ତା ॥2॥

ମଚ୍ଚିଦାତ୍ମା ମୁନିଜନ ସିଏ ମୋଠି ଥାଏ ସର୍ବଦୈବ
ସେ ଯୋଗେ ସେ ଯୁଗପୁରୁଷ ମୋ ସର୍ବଦା ବାସଭୂମି ।
ଭାର୍ଯ୍ୟାପୁତ୍ରସ୍ୱଜନସଖ ସେ ବର୍ଜି କୌପୀନ ପିନ୍ଧେ
ବର୍ଜେ ଚୂଡା ଲଗୁଡତିଳକେ ପୁଣ୍ୟ ଯଜ୍ଞୋପବୀତେ ॥3॥

କଲ୍ୟାଣାର୍ଥେ ରତ ପରମହଂସଙ୍କ ଭୋଗାର୍ଥ ଥାଏ
ଲଜ୍ଜା ଦୂରୀକରଣ ଜନିତ ସ୍ୱଳ୍ପ ବସ୍ତ୍ରାଦି ପାଶେ ।
ତକ୍ୱିଞ୍ଚିତ୍ ମଧ୍ୟ ପରହିତରେ ପ୍ରାଣରକ୍ଷାର୍ଥ ମାତ୍ର,
ହେଲେ ହେଁ ତା ସବୁକିଛି ନୁହେଁ, ଜାଣ ଅନ୍ୟାନ୍ୟ କୃତ୍ୟ ॥4॥

ତାହା ପାଶେ ହିମ କି ତପନ ପ୍ରାୟଶଃ ନିଷ୍ପ୍ରଭାବ
ଈର୍ଷାଦ୍ୱେଷସ୍ମୟରହିତ ସେ କାମନାକ୍ରୋଧବର୍ଜୀ ।
ସ୍ୱଚ୍ଛନ୍ଦେ ସେ ଶବ ସମ ମଣେ ନିତ୍ୟ ସନ୍ଦେହମୁକ୍ତ
"ବ୍ରହ୍ମାହଂ" ତା ସତତ ମନନେ, ତେଣୁ ସେ ବ୍ରହ୍ମରୂପ ॥5॥

ସାରାବିଶ୍ୱେ ରହିଅଛି ମୁ ସେ ବ୍ରହ୍ମରେ ଐକ୍ୟଭାବେ
ଏ ସଂସାରେ ଜଡିତ ମୁଁନୁହେଁ - ଚେତନା ଏହି ଥାଏ ।
ବ୍ରହ୍ମାହଂଜ୍ଞାନଯୁତ ନିତି ସେ ଜ୍ଞାନ ଯଜ୍ଞୋପବୀତ
ପ୍ରଜ୍ଞା ଯା ଦଣ୍ଡତିଳକଶିଖା, ବ୍ରହ୍ମରେ ସେ ପ୍ରତିଷ୍ଠ ॥6॥

ସର୍ବ କାମ କରି ତ୍ୟାଗ ଅଦ୍ୱୈତେ ପରମ ସ୍ଥିତି
ଜ୍ଞାନ-ଦଣ୍ଡକ ଯା ପାଶେ ଏକଦଣ୍ଡୀ ହିଁ ବାସ୍ତବେ ॥7॥

କାଷ୍ଠଦଣ୍ଡ ଧରେ ମାତ୍ର ସର୍ବାଶୀ ଜ୍ଞାନବର୍ଜିତ
ସେ ଯାଏ ନରକେ ଘୋର   ମହାରୌରବ ନାମକ ॥8॥

ନାହିଁ ସତ୍ୟାର୍ଥିଯୋଗୀର ଲୋଡା ପୂଜା କି ଅର୍ଚ୍ଚନା ।
କରେ ନା ସେ ପ୍ରଶଂସା ବା ନିନ୍ଦା, ଅର୍ପଣ ଅର୍ଚ୍ଚନା ॥9॥

ବସ୍ତ୍ର ତାର ମହାକାଶ   ସେ ନିଷ୍ପୃହ ଧନେ ଜନେ
ନ ରଖେ ଅର୍ଥରେ ଚିତ୍ତ ନ ରଖେ ସ୍ୱାର୍ଥ କାମନା ॥10॥

ସମଭାବ ସୁଖେ ଦୁଃଖେପ୍ରତିଷ୍ଠାପ୍ରିୟ ସେ ନୁହେଁ
ସମସ୍ତ ଦ୍ୱୈତ ସମ୍ମୋହ ତା ନେତ୍ରେ ସ୍ଥିତିବର୍ଜିତ ॥11

ତଦାତ୍ମକ ନୁହଁ ସେହି   ଏକାତ୍ମ୍ ଲୟ ନିବଦ୍ଧ ।
ପ୍ରମୁକ୍ତ ପରମହଂସ   ସମସ୍ତ ଅଭୟଯୁକ୍ତ ॥12॥

ଓମ୍ ଶାନ୍ତିଃ ଶାନ୍ତିଃ ଶାନ୍ତିଃ
ମନ୍ଦାକ୍ରାନ୍ତା: 222/2••11/111/2••21/221+22
ପଥ୍ୟାବକ୍ତ୍ର: ଅର୍ଦ୍ଧସମ ମାତ୍ରିକ ଛନ୍ଦ
କରଞ୍ଜି:   121/111+21

===========================

ପରମହଂସୋପନିଷଦ୍

ଅନୁବାଦ: ଲଲାଟେନ୍ଦୁ କବି

ମନ୍ଦାକ୍ରାନ୍ତା: 222/2••11/111/2••21/221+22

ପଥ୍ୟାବକ୍ତ୍ର: ଅର୍ଦ୍ଧସମ ମାତ୍ରିକ ଛନ୍ଦ

କରଞ୍ଜି:   121/111+21

===========================

परमहंस उपनिषद - अनुवाद

मान-अपमान समान भाव से।

वह निंदा से प्रभावित नहीं होता,

अभिमान, ईर्ष्या, रुतबा, ख़ुशी, या दुःख,

लोभ, क्रोध, या मोह,

उत्साह, अहंकार, या अन्य प्रलोभन;

क्योंकि वह जानता है कि वह न तो शरीर है और न ही मन।

संदेह और मिथ्या ज्ञान के प्रभाव से मुक्त
वह प्रेम के भगवान के साथ एकजुट होकर रहता है।
जो सदैव शांत, अपरिवर्तनीय है,
अविभाज्य, समस्त आनंद का स्रोत
और बुद्धि. प्रभु ही उसका सच्चा घर है,
उनके तीर्थयात्री के बालों का गुच्छा, उनका पवित्र धागा;
क्योंकि वह एकात्मक अवस्था में प्रवेश कर चुका है।

3. हर स्वार्थी इच्छा का त्याग करके,
उसने प्रेम के प्रभु में अपना विश्राम पाया है।
बुद्धि वह कर्मचारी है जो अब उसका समर्थन करता है।
जो भिक्षुक की लाठी लेते हैं
वे अभी भी अपनी इंद्रियों की दया पर निर्भर हैं
भारी कष्ट से बच नहीं सकते.
प्रबुद्ध व्यक्ति जीवन के इस सत्य को जानता है।

4. उसके लिए ब्रह्मांड उसका परिधान है
और प्रभु अपने से अलग नहीं होते।
वह कोई पैतृक तर्पण नहीं देता;
वह किसी की प्रशंसा नहीं करता, किसी को दोष नहीं देता,
कभी किसी पर निर्भर नहीं रहता.

उसे मंत्र दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है,
अब ध्यान का अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं है।
परिवर्तन और परिवर्तनहीन वास्तविकता की दुनिया
हम उसके लिए एक हैं, क्योंकि वह ईश्वर में सब कुछ देखता है।

5. जो साधक भगवान को खोज रहा है
स्वयं को स्वार्थी आसक्तियों से मुक्त करना होगा
लोगों, धन और संपत्ति के लिए।
जब उसका मन हर स्वार्थी इच्छा को त्याग देता है,
वह द्वंद्व से मुक्त हो जाता है
सुख और दुःख का और अपनी इंद्रियों पर शासन करता है।

अब वह दुर्भावना रखने में सक्षम नहीं है;
अब वह प्रसन्नता का विषय नहीं है,
क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ स्वयं में विश्राम प्राप्त कर लेती हैं।
एकात्मक अवस्था में प्रवेश,
वह विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।
सचमुच वह विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।
शांति शांति शांति

Paramahamsa Upanishad
Translations

1. Narada (Lord of Events) inquired of the Lord of Love: "What is the state of the illumined man?" The Lord replied: "Hard to reach is the state Of the illumined man. Only a few Attain to it. But even one is enough. For he is the pure Self of the Scriptures; He is truly great because he serves me. And I reveal myself through him always." He has renounced all selfish attachments And observes no rites or ceremonies. He has

only minimum possessions, And lives his life for the welfare of all.

2. He has no staff nor tuft nor sacred thread. He faces heat and cold, pleasure and pain, Honor and dishonor with equal calm. He is not affected by calumny, Pride, jealousy, status, joy, or sorrow, Greed, anger, or infatuation, Excitement, egoism, or other goads; For he knows he is neither body nor mind. Free from the sway of doubt and false knowledge He lives united with the Lord of Love. Who is ever serene, immutable, Indivisible, the source of all joy And wisdom. The Lord is his true home, His pilgrim's tuft of hair, his sacred thread; For he has entered the unitive state.

3. Having renounced every selfish desire,
He has found his rest in the Lord of Love.
Wisdom is the staff that supports him now.
Those who take a mendicant's staff while they
Are still at the mercy of their senses
Cannot escape enormous suffering.
The illumined man knows this truth of life.

4. For him the universe is his garment And the Lord not separate from himself. He offers

no ancestral oblations; He praises nobody, blames nobody, Is never dependent on anyone. He has no need to repeat the mantram, No more need to practice meditation. The world of change and changeless reality Are one to him, for he sees all in God.

5. The aspirant who is seeking the Lord Must free himself from selfish attachments To people, money, and possessions. When his mind sheds every selfish desire, He becomes free from the duality Of pleasure and pain and rules his senses. No more is he capable of ill will; No more is he subject to elation, For his senses come to rest in the Self. Entering into the unitive state, He attains the goal of evolution. Truly he attains the goal of evolution.

O M shanti shanti shanti ।

ପରମହଂସୋପନିଷଦ୍

https://www.thehinduportal.com/2015/07/paramahamsa-upanishad-translations.html

परमहंसोपनिषत्

paramahaṃsopaniṣat

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राःस्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवंसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः । स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्ताक्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
हरिः ॐ ॥

अथ योगिनं परमहंसनं कोऽयं मार्नस्तेषं का स्थितिरिति नारदो भगवन्तमुपगत्योवाच । तं भगवानाः । योऽयं परमहंसमार्गो लोके दुर्लभतरो न तु बाहुल्यो यद्येको भवति स एव नित्यपूतस्थः स एव वेदपुरुष इति विदुषो मन्यन्ते महापुरुषो यच्चित्तं तत्सर्वदा मय्येवावतिष्टते तस्मादहं च तस्मिन्नेवावस्थीयते । असौ स्वपुत्र-मित्र- कलत्र - बन्व्वादी - ञ्शिखायज्ञोपवीते स्वाध्यायं च सर्वकर्माणि संन्यस्यायं ब्रह्माण्डं च हित्वा कौपीनं दण्डमाच्छादनं च स्वशरीरोपभोगार्थाय च

लोकस्योपकारार्थाय च परिग्रहेत्तच्च न मुख्योऽस्ति कोऽयं मुख्य इति चेदयं मुख्यः ॥ १॥

न दण्डं न शिखं न यज्ञोपवीतं न चाच्छादनं चरति परमहंसः । न शितं न चोष्णं न सुखं न दुःखं न मानावमाने च षडूर्मिवर्जं । निन्दागर्वमत्सर : दम्मदर्पेच्छाद्वेषसुखदुःख - कामकोध -:लोभमोह - हर्षसु उयाहंकारादींश्च हित्वा स्ववपुः कुणपमिव दृष्यते यतस्तद्वपुरपध्वस्तं संशयविपरीतमिथ्याज्ञानानां यो हेतुस्तेन नित्यनिवृत्तस्तन्नित्यबोधस्तत्स्वयमेवावस्थितिस्तं शन्तमचलमद्वयानन्दविज्ञानघन एवास्मि । तदेव मम परम्धाम तदेव शिखा च तदेवोपवीत च । परमात्मात्मनोरेकत्वज्ञानेन तयोर्भेद एव विभग्नः सा सध्या ॥ २॥

सर्वान्कामान्परित्यज्य अद्वैते परमस्थितिः ।
ज्ञानदण्डो धृतो येन एकदण्डो स उच्यते ॥
काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशि ज्ञानवर्जितः ।

स याति नरकान्धोरान्महारौरवसञ्ज्ञकान् ॥

इदमन्तरं ज्ञात्वा स परमहंसः ॥ ३॥

आशाम्बरो न नमर्कारो न स्वधाकारो न निन्दा न स्तुतिर्यादृच्छिको भवेद्भिक्षुर्नाऽऽवाहनं न विसर्जनं न मन्त्रं न ध्यानं नोपासनं च न लक्ष्यं नाकक्ष्यं न पृथग्नापृथगहं न न त्वं न सर्व चानिकेतस्थितिरेव भिक्षुः सौवर्णादीनं नैव परिग्नहेन्न लोकं नावलोकं चाऽऽबाधकं क इति चेद्बाधकोऽस्त्येव यस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन दृष्टं च स ब्रह्महा भवेत् । यस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन ग्राह्यं च स आत्महा भवेत् । तस्माद्भिक्षु - र्हिरण्यं रसेन न दृष्टं च न स्पृष्टं च न ग्राह्यं च । सर्वे कामा मनोगता व्यावर्तन्ते । दुःखे नोद्विग्नः सुखे न स्पृहा त्यागो रागे सर्वत्र शुभाशुभयोरनभिस्नेहो न द्वेष्टि न मोदं च । सर्वेषामिन्द्रियाणां गतिरुपरमते य आत्मन्येवावस्थीयते यत्पूर्णानन्दैकबोधस्तदब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवति कृतकृत्यो भवति ॥ ४॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं

पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवंसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः

। स्वस्ति नस्ताक्ष्र्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो

बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। हरिः ॐ ॥